International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-9, Issue-5 Sep - Oct – 2022
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

सारनाथ – रचनात्मक एवं कलात्मक स्थापत्य कला

पूजा चौहान
शोधार्थी
ललित कला विभाग
मालवांचल विश्वविद्यालय
इन्दौर, म0प्र0

ड़ॉ प्रीति गुप्ता
शोध निर्देशिका
ललित कला विभाग
मालवांचल विश्वविद्यालय
इन्दौर, म0प्र0

सारांश

भगवान गौतम बुद्ध के **'धर्मचक्र प्रवर्तन स्थल'** अर्थात प्रथम धर्मोपदेश स्थल होने के कारण **'सारनाथ'** के प्रति बौद्ध मतावलंबियों की अगाध श्रद्धा है। सारनाथ बौद्ध धर्म के प्रारंभिक इतिहास से जुड़ा हुआ हैं यह बौद्ध धर्म के सबसे प्रसिद्ध स्थानों में से एक है, इस जगह से बौद्ध धर्म का विकास हुआ। ये वह प्रसिद्ध स्थान है जहाँ पर भगवान बुद्ध ने बोधगया में बोधिवृक्ष के नीच ज्ञान प्राप्ति के पश्चात भगवान बुद्ध वाराणसी आये, और उन्होंने दुःख के कारण और निवारण (मध्यम प्रतिपदा) का उपदेश अपने पंचवर्गीय भिक्षुओं को मानवता के कल्याण हेतु अपना प्रथम धर्म उपदेश दिया था, जो धर्मचक्र प्रवर्तन कहलाया। यहीं से बौद्ध धर्म का उदय हुआ। बौद्ध धर्म में सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण निहित है, इसी लिए यह धर्म अल्प समय में ही पूरे भारत में फैल गया। इसके अलावा अन्य देश श्रीलंका, बर्मा (म्यांमार), चीन, जापान, कोरिया, थाईलैंड, वियतनाम, मंगोलिया और तिब्बत आदि में भी विस्तार हुआ।

कुंजी शब्द–रचनात्मक एवं कलात्मक स्थापत्य कला।

अध्ययन की ऐतिहासिक पृश्ठभूमि

बौद्ध धर्म के विकास के साथ ही सम्पूर्ण भारत व बौद्ध धर्म को अपनाने वाले देषों में बौद्ध कालीन वास्तु/स्थापत्यकला का विकास हुआ। अपने इष्ट की उपासना हेतु स्तूपों का निर्माण किया गया तथा भिक्षुओं को रहने हेतु विहारों का निर्माण किया गया। सम्राट अषोक ने बौद्ध धर्म ग्रहण करने के साथ भगवन बुद्ध से जुड़े स्थलों को चिर स्थाई बनाने के लिए समस्त स्थानों पर स्तूप, चैत्य, विहार, स्तंभ आदि का निर्माण कराया। सारनाथ को तीर्थस्थल बनाने के लिए अषोक के काल में निर्माण कार्य हुआ। सर्वप्रथम जहाँ पंचवर्गीय भिक्षुओं ने बुद्ध का सबसे पहले आदर सत्कार किया था, उस स्थान पर एक स्तूप का निर्माण किया गया, जिसे आज चौखण्डी स्तूप के नाम से जाना जाता है। इसी क्रम में जहाँ भगवान बुद्ध ने पंचवर्गीय भिक्षुओं को बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का उपदेष दिया व उन पांचों को बौद्ध धर्म ग्रहण करवाया, उस स्थान की स्मृति स्वरूप अषोक ने धमेख स्तूप तथा एक विशाल प्रस्तर स्तंम्भ स्थापित करवाया। सम्राट अशोक के पश्चात सम्राट कनिष्क के काल में भी सारनाथ में अनेक स्मारक बनवाये तथा अभिलेख लिखवाये। सारनाथ में सम्राटों ने ही नहीं बल्कि बौद्ध धर्म के उपासकों व उपासिकाओं ने भी बौद्ध स्मारकों का निर्माण कराया। जिसमें उल्लेखनीय नाम गडवाल वंश के शासक गोविन्द चन्द की रानी **'कुमार देवी'** ने यहाँ एक विशाल संघाराम का निर्माण करवाया था, जो पुरातात्विक उत्खनन में ध्वस्त रूप में प्राप्त हुआ। जिसे कुमार देवी विहार के नाम से जाना जाता है। सारनाथ बौद्ध धर्म के चार महान तीर्थ स्थलों लुम्बनी, बोधगया, सारनाथ एवं कुशीनगर में से एक है।

महापरिनिर्वाण सूत्र

महापरिनिर्वाण सूत्र के अनुसार महात्मा बुद्ध ने स्वंय अपने शिष्यों से इन चार स्थलों पर जाने को कहा था, जो क्रमशः उनके जन्म, ज्ञान प्राप्ति, प्रथम धर्मोपदेश एवं महापरिनिर्वाण से सम्बन्धित थे। सारनाथ 12वीं शताब्दी तक बौद्ध धर्म का केन्द्र बना रहा, जिनका वर्णन कई विदेशी यात्रियों ने अपने यात्रा वृतांत में किया है।

भौगोलिक स्थिति

सारनाथ 25°19' अक्षांश उत्तर तथा 83°1' देशान्तर पूर्व में स्थित है। यह स्थान वाराणसी कैंट से 8 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। यहाँ तक पहुँचने के लिये पक्की सड़क से आसानी से पहुंच सकते हैं। सुमंगलम–विलासिनी– में कहा गया है कि उरूवेला (बोधगया) से इसिपत्तन की दूरी 18 योजना है। सारनाथ का क्षेत्र भूमध्य रेखा से दूर होने की करण यहाँ की जलवायु समशीतोष्ण रहती है। यहाँ की जलवायु को हवेनसांग ने (सन् 629-645 ई.) अपने यात्रा विवरण में शीतोष्ण कहा था।

सारनाथ का नामकरण

सारनाथ का प्राचीन नाम **'इसिपत्तन मिगदाय'** (ऋषिपत्तन मृगदाय) था, बुद्ध काल में यही नाम प्रचलित था। पाली ग्रंथों में भी इसी नाम का वर्णन प्राप्त होता है। संस्कृत ग्रंथों में **'ऋषिपत्तन मृगदाय'–'ऋषिपत्तन मृगदाव'** और **'ऋषिवदनमृगदाव'** का भी उल्लेख मिलता है। इस स्थान का मृगदाववन नाम से सम्बंधित भगवान बुद्ध के पूर्व जन्म की रोचक कथा जुड़ी है–जिसमें बोधिसत्व गौतम बुद्ध मृगों के एक झुण्ड के राजा थे। इस वन में वाराणसी का राजा आता और गई मृगों को मार ले जाता। जिससे दुःखी होकर बोधिसत्व बुद्ध ने राजा से आग्रह किया कि यदि राजा यहाँ आखेट न करे तो प्रतिदिन एक मृग स्वंय उसके पास पहुँच जायेगा, जिसके माँस का प्रयोग वह भोजन के रूप में कर सकता है। बोधिसत्व के इस प्रस्ताव को राजा ने मान लिया और इसी क्रम में राजा के पास एक हिरन स्वंय जाने लगा। किन्तु एक दिन एक हिरनी की बारी आई तो वह विलाप करने लगी, उसकी आवाज सुन बोधिसत्व वहाँ पहुँचे और मृगी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह गर्भवती है, मृगी बोली के में मरने के लिये तैयार हूँ परंतु मेरी मृत्यु के साथ ही मेरे अजन्मे बच्चे की मृत्यु हो जायेगी। जिसने अभी दुनिया में आँखें भी नहीं खोलीं मैं अपने प्राणों के लिए दुखी नहीं वरन अपने अजन्मे शिशु के लिये दुखी हूँ। मृगी की व्यथा सुन बोधिसत्व ने अपना वचन निभाने के लिये स्वंय जाने का निर्णय किया और राजमहल पहुँच गये, जब यह सूचना राजा तक पहुंची तो राजा ने आकर बोधिसत्व से वहाँ आने का प्रयोजन जाना, तब मृगों के राजा बोधिसत्व ने काशीराज को सम्पूर्ण व्रतान्त सुनाया तब काशीराज को बड़ा दुःख हुआ। उनका मन स्वंय के लिये घृणा से भर गया। वह बोले आप पशु शरीर में भी मानव से बुद्धिमान हैं और में मानव शरीर धारण करने पर भी पशुओं से तुच्छ हूँ। उन्होंने तुरंत ही मृगवध निषेध का आदेश दिया, और तब से उस वन में समस्त मृग निर्भय रूप से विचरण करने लगे। इस प्रकार इस वन का नाम **'मृगदायवन'** पड़ा।

इस स्थान के **'सारनाथ'** नामकरण हेतु विद्वानों के कई मत प्रचलित हैं। क्योंकि सारनाथ नाम अधिक प्राचीन नहीं है। किंतु कुछ लोग **'सारंगनाथ'** शब्द से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। जिसका तात्पर्य **'मृगों का स्वामी'** है। कनिंघम के अनुसार **'सारंगनाथ'** नाम को शिव से जोड़ा गया, क्योंकि इस क्षेत्र में **'सारंगनाथ'** नाम से एक शिव का मन्दिर विद्यमान है। इसलिये इस स्थान का नाम सारनाथ पड़ गया। परंतु यह मन्दिर मुहम्मद गौरी के काल में नहीं था। क्योंकि 1193 ई. में मुहम्मद गौरी ने यहाँ के राजा जयचन्द्र को परास्त कर वाराणसी के समस्त मंदिरों को ध्वस्त किया था। अर्थात यह मंदिर गौरी काल से बाद का है, जिसके बारे में वर्णन प्राप्त होता है कि सारंगमुनि ने यहाँ शिवलिंग की स्थापना की थी। जिसके बारे में कई कथायें प्रचलित हैं, हिन्दुओं की मान्यताओं के अनुसार श्रावण मास के माह भर भगवान शिव यहाँ निवास करते हैं। इसलिए श्रावण मास में

यहाँ प्रतिवर्ष मेले का आयोजन होता है और प्रत्येक सावन सोमवार को लाखों श्रद्धालु यहाँ भगवान शिव के दर्शन के लिए पहुँचते हैं। इसी कारण कनिंघम ने भी एक जगह सारंगनाथ को शिव से सम्बंधित बतलाया, क्योंकि शिव अपने बाएं कन्धे पर मृग धारण करते हैं। परंतु अंततः उन्होंने भी **'सारंगनाथ'** को (बुद्ध) के नाम से सम्बोधित किया।

सारनाथ का इतिहास

सारनाथ में भगवान बुद्ध ने ज्ञान की प्राप्ति के उपरांत अपना पहला उपेदश धर्म–चक्र–प्रवर्तन दिया था। भगवान बुद्ध के उपदेशों के प्रचार–प्रसार करने के क्रम में सम्राट अशोक का 234 ईसा पूर्व लगभग सारनाथ में आगमन हुआ। सारनाथ से प्राप्त अभिलेखों में इस स्थान का नाम **'धर्मचक्र या सधर्म–चक्रप्रवर्तन विहार'** भी मिलता है। मौर्य सम्राट अशोक के समय से सारनाथ की प्रसिद्ध बड़ी क्योंकि अशोक के आदेशानुसार इस स्थान पर स्थापत्यकला का अदभुत नमूना एक प्रस्तर का विशाल स्तंभ स्थापित किया गया। जिसके शीर्ष में चार सिंह–प्रतिमाओं से अलंकृत गिया गया है जो बौद्ध स्थापत्य कला का विश्व प्रसिद्ध उदाहरण प्रस्तुत करता है। गुप्तकाल (चौथी–छठवीं सती ई.) में सारनाथ स्थापत्यकला व मूर्तिकला का केन्द्र बन गया। इस समय चीनी यात्री फाह्यान ने सारनाथ का भ्रमण किया तथा यहाँ उसने चार स्तूप दो विहार देखे थे। हर्षवर्धन के काल (606-647ई.) सारनाथ में स्थित पूर्ववर्ती भवनों का जीर्णोद्वार किया गया, जिसका वर्णन ह्वेनसांग ने अपनी यात्रा में वर्णन किया है। पालवंश के राजा महीपाल के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि महमूद गजनबी ने यहाँ के स्मारकों को अति क्षति पहुँचाई। तत्पश्चात गढ़वा सम्राट गोविन्द चन्द्र (1114-1154 ई.) की रानी **'कुमारी देवी'** ने सारनाथ में एक विशाल **'धर्मचक्र जिन विहार'** नामक विहार का निर्माण कराया। यह विहार ही अंतिम भव्य स्मारक था, इसके पश्चात् सारनाथ में स्थापत्यकला तथा मूर्तिकला पर विराम लग गया। परंतु 12वीं शताब्दी में **'कुतबुद्दीन ऐबक'** इसे पूरी तरह ध्वंश कर दिया।

सारनाथ प्रान्गढ़ में प्रवेश करते ही चौखंडी स्तूप परिलक्षित होता है यहाँ भगवान बुद्ध अपने प्रथम पांच शिष्यों से मिले थे। धमेख के स्तूप सारनाथ का प्रमुख आकर्षण है जो कला व स्थापत्य की दृष्टि अद्वितीय है। लम्बे समय तक सारनाथ का ज्ञान संसार को नहीं था। फिर 1794 ई. में सारनाथ प्रकाश में आया, जब बनारस के राजा **'चेतसिंह'** के दीवान **'जगत सिंह'** ने अज्ञानतावस यहाँ के स्तूप को इमारती सामान की खोज में उधेड़ डाला। जिसमें हरे रंग के पत्थर से बनी एक मंजुशा मिली, जिसमें भगवान बुद्ध के धातु–अवशेष रखे थे। उसे पास ही गंगा नदी में प्रवाहित कर दिया गया। इसके पश्चात काशी के तत्कालीन अधिकारी श्री जोनाथन डंकन ने सन 1798 ई. इस खुदाई से प्राप्त अवशेषों का वर्णन लेख द्वारा किया, जिससे लोगों का ध्यान सारनाथ के ध्वंसावशेष की ओर गया।

पुरातात्विक उत्खनन

सारनाथ में सर्वप्रथम 1815 में कर्नल सी. मैकेजी ने उत्खनन कार्य प्रारम्भ किया, परंतु उन्हें कोई विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। 1734–36 **ई. में अलैक्जेंडर कनिंघम** 98 ने यह कार्य अपने हाथों में लिया और उत्खनन करवाया। जिसमें खुदाई द्वारा चौखण्डी तथा धमेक स्तूप प्राप्त हुये। कनिंघम ने धम्मेख स्तूप से **'ये धर्म हेतु प्रभवा'** आदि बौद्ध मन्त्र से लिखित एक शिलापट्ट प्राप्त किया, जिस पर बौद्ध सूत्र लिखा था। धर्मराजिका स्तूप के पास एक विहार तथा एक मंदिर खोज निकला। कनिंघम ने यहाँ से प्रस्तर मंजुषा, अनेक मूर्तियाँ तथा अलंकृत प्रस्तर फलक प्राप्त किये, जिन्हें इण्डियन म्यूजियम ऑफ एशियाटिक सोसायटी को दे दिया, जो आज कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। कनिंघम द्वारा प्राप्त की गई लगभग 40 मूर्तियों को 50–60 गाड़ियाँ भरकर तथा पत्थर की अन्य सामग्रीयों को वरूणा नदी पर पुल बनाने के लिए खम्भों की नींव में डाल दिया

गया। कनिंघम के पश्चात अंग्रेजी पुरातत्व विभाग के इंजीनिजर **'मेजर किटटो'** ने सन 1857–62 ई. में उत्खनन करवाया। जिसमें उन्होंने धमेख स्तूप के पास अनेक स्तूपों और जैन मंदिर के उत्तरी और एक विशाल विहार भवन को खोजा। इनके पश्चात ई. थामस तथा प्रो. फिट्स एडवर्ड हॉल ने भी यहाँ उत्खन्न करवाया। सन 1865 ई. में श्री सी. हार्न ने यह कार्य संभाला, और यहाँ से प्राप्त समस्त सामग्रीयों को भी इण्डियन म्यूजियम में रखा गया। श्री रिवेट कारनेक को सन 1877 ई. में यहाँ से एक बुद्ध मूर्ति प्राप्त हुई। इसके दो दशकों के पश्चात **'सन 1904–05 ई. में एफ. ओ. ऑरटेल'** द्वारा प्राचीन मृगदाय के केन्द्र में उत्खनन किया गया, जिसमें मुख मन्दिर, सिंह–शीर्ष सहित अशोक–स्तम्भ, धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा में बुद्ध प्रतिमा, कनिष्क के शासनकाल के तीसरे वर्ष में बनी प्रस्तर–छत्र सहित बोधिसत्व प्रतिमा और 476 प्रतिमा खण्ड एवं 41 अभिलेख प्राप्त हुए।

सारनाथ में उत्खनन का कार्य निरन्तर चलता रहा, जिसमें सर जॉन मार्सल, स्टेन कोनो, डब्लू एच. निकोकस, दयाराम साहनी एव बी. बी. चक्रवर्ती ने सारनाथ के विशाल क्षेत्र में उत्खनन करवाया। इस उत्खनन कार्य में यहाँ से कुषाण कालीन तीन विहार प्राप्त हुए। इसी क्रम में 1914–15 ई. में हारग्रिव्स ने मुख्य मंदिर के पूर्वी एवं पश्चिमी क्षेत्र में उत्खनन कर पश्चिम में गजपृष्ठाकार चैत्य, जो उत्तरवर्ती मौर्यकाल का है, के अतिरिक्त परवर्ती काल की अन्य संरचनओं को उदघाटित किया। 1927–32 ई. में पुनः श्री दयाराम साहनी। द्वारा बड़े स्तर पर उत्खनन कार्य किया गया, जो कि निरन्तर पांच वर्षों तक चलता रहा। जिसके फलस्वरूप धमेख स्तूप एवं मुख्य मंदिर के बीच में अनेक संरचनायें तथा अलंकृत ईटों से निर्मित स्तूप तथा मार्ग प्राप्त किये। उत्खनन कार्यों के बीच–बीच यहाँ निरन्तर पुरातात्विक सामग्री प्राप्त होती रही, जिसमें मृदभांड, कंघे, व्याल की मूर्ति तथा मृग धारण किये हुए बुद्ध की प्रतिमा प्राप्त हुई। यहाँ पर दो मीटर चौड़ा ईटों से बना पक्का रास्ता प्राप्त हुआ जो केन्द्र की ओर जा रहा है।

स्तूप के दक्षिण–पूर्वी कोने की ओर प्रदक्षिणा–पथ के चिन्ह भी दिखाई दिये हैं। यहाँ पर निरन्तर उत्खनन कार्य चलता रहता है, 2005 ई. में धम्मेख स्तूप के पास उत्खनन हुआ। जिसमें मंदिर व बिहार मिलने की आशंका व्यक्त की गई, जो भविष्य में होने वाले उत्खनन में प्रकाश में आ सकें। नवम्बर 2009 में संग्रहालय के लॉन–क्षेत्र में परिक्षण उत्खनन किया गया है। जो अब भी चल रहा है परन्तु इसे अभी आवरण में रखा गया है, यहाँ एक मिट्टी के टीले नुमा आकृति को लीपकर रखा गया है। जो दर्शकों में उत्सुकता भरता है कहीं ये कोई स्तूप का हिस्सा तो नहीं, जो समय आने पर ही आम जनता के सामने आ सकेगा। परन्तु यह निश्चित है कि **'सारनाथ–क्षेत्र'** में आज भी बौद्ध स्थापत्यकला की सामग्री भू–गर्भ में विद्यमान है।

सारनाथ उत्खनित क्षेत्र के प्रमुख स्मारक धर्मराजिका स्तूप

इस स्तूप का निर्माण मौर्य सम्राट अशोक ने अपने शासन काल में करवाया था। जिसमें बुद्ध के अस्थि खण्ड, मोति, स्वर्ण पत्र और रत्न रखे थे। अस्थियों को अशुभ मानकर दीवान ने गंगा में प्रवाहित कर दिया। छोटी अस्थि मंजुषा का पता नहीं चला परंतु बड़ी प्रस्तर पेटिका कलकत्ता संग्रहालय में सुरक्षित है। 1815 ई. से लेकर 1835 ई. तक यहाँ पर कर्नल मैंकेजी, कनिंघम तथा मिस एम्माराबर्ट् द्वारा उत्खनन कार्य किया गया जिसमें ज्ञात हुआ कि इस स्तूप की मूल संरचना गोलार्द्ध ही थी। जिसके बार–बार उत्खनन से इसका वास्तविक स्वरूप नष्ट हो गये, तथा अब केवल एक विशाल और गोल चबूतरा ही शेष रह गया। इस स्तूप तथा इसके आस–पास उत्खनन के दौरान निम्न मूर्तियाँ व सामग्री प्राप्त हुई।

अभय मुद्रा में बोधिसत्व की विशाल तथा अतिसुन्दर प्रतिमा प्राप्त हुई जिसकी ऊंचाई 9 फीट 5 इंच है। एक और भगवान बुद्ध की अभय मुद्रा में प्रतिमा प्राप्त हुई, जिसकी ऊँचाई 4 फीट 3 इंच है तथा इसका निर्माण गुप्तकाल में हुआ। यहाँ से ही गौतम बुद्ध की प्रसिद्ध **'धर्मचक्र प्रवर्तन'** मुद्रा की चुनार पत्थर से निर्मित 4 फीट 3 इंच ऊँची अदभुत शिल्पकला को संजोये गुप्तकालीन प्रतिमा प्राप्त हुई। जिसका प्रभामण्डल कमल पुष्प पात्रों से अलंकृत है, यह प्रतिमा सारनाथ की अन्य प्रतिमाओं से सर्वोत्कृष्ठ है। इसी स्तूप के समीप से बरद मुद्रा में खड़ी हुई देवी तारा की मूर्ति प्राप्त हुई, जिसकी ऊंचाई एक फिट तीन इंच है। इस मूर्ति के पार्श्व में 8वीं शताब्दी ई. की लिपि में **'ये धम्मा हेतु प्रभवा'** गाथा के साथ 9 पंक्तियों बाला लेख अंकित है। इसके अतिरिक्त वरद मुद्रा में खड़ी बुद्ध प्रतिमा प्राप्त हुई, जिसकी ऊँचाई 2 फीट 2 इंच है, इस प्रतिमा के दोनों और **'मैत्रेय अवलोकितेश्वर'** की मूर्तियाँ उकेरी गई हैं। इस मूर्ति का निर्माण उत्तर गुप्तकाल का माना जाता है। इस समय इस स्तूप का व्यास 110 फीट है और केवल इसकी नींव अवशेष रह गई है।

मुख्य मंदिर

यह मंदिर धर्मराजिका स्तूप के उत्तर की ओर लगभग 6.10 मी. दूर मुख्य मंदिर के भग्नावशेष प्राप्त होते हैं। प्राचीन काल में इस मंदिर का नाम **'मूलगन्ध कुटी'** था। प्राचीन काल में भगवान बुद्ध इसी कुटी में निवास करते थे, जिसमें सदैव सुगन्धित द्रव्य सुवासित रहते थे। इसीलिए इस कुटी को मूलगन्ध कुटी कहा गया श्रावस्ती में भी गंध कुटी के अवशेष हैं, परंतु यहाँ गंध कुटी कहा गया। जबकि सारनाथ में मूलगन्ध कुटी है। भिक्षु धर्म रक्षित का मानना है कि भगवन बुद्ध ने **'धर्मचक्र प्रवर्तन'** तथा प्रथम वर्ष काल इसी कुटी में व्यतीत किया था। यह इमारत वर्गाकार योजना पर आधारित है। जिसकी प्रत्येक भुजा की लम्बाई 18.19 मी. है। तथा प्रवेश द्वारा पूर्व की ओर है। ह्वेनसांग ने 7वीं शताब्दी में इस मंदिर को 200 फीट ऊँचा देखा था, जसके शीर्ष भाग पर सोने का एक आमकल सुशोभित था। यह मंदिर विशाल और भव्य रहा होगा। मंदिर ईंट और प्लास्टर से निर्मित है कहीं–कहीं पुराने अवशेष निकालकर उकेरे हुए पत्थर लगा दिए गये। इसी मंदिर से गुप्त शैली में निर्मित एक स्थानक बुद्ध की प्रतिमा इसके दक्षिण कोने में मिली थी। ऐसा प्रतीत होता है कि गर्भगृह की छत को गिरने से बचाने के लिए अन्य संरचनाओं का निर्माण किया गया था। मंदिर के चारों ओर बने 100 ताखों में सोने की बुद्ध प्रतिमाएँ स्थापित थी। जिसके मध्य तांबे से निर्मित भगवान बुद्ध की आदम कद **'धर्मचक्र प्रवर्तन मुद्रा'** में प्रतिमा प्रतिस्थापित थी। मुख्य मंदिर के प्रवेश द्वार के पूर्व की ओर एक विशाल आयताकार मण्डप है और उसमें एक लम्बा आँगन है जिसमें बड़ी संख्या में छोटे–छोटे स्तूपों के अवशेष प्राप्त होते हैं।

मुख्य मंदिर की स्थापत्यकला के आधार पर कहा जा सकता है कि इस मंदिर का वर्तमान स्वरूप गुप्तकाल में प्राप्त हुआ। परंतु मूलरूप से इसका निर्माण किसने करवाया यह कह पाना कठिन है। अनुमानतः इसका श्रेय सम्राट अशोक को जाता है। यह मंदिर अपने काल में वास्तु स्थापत्यकला की दृष्टि से समृद्ध रहा होगा।

अशोक स्तंभ

मुख्य मंदिर से पश्चिम में 2.03 मी. ऊँचा अशोक कालीन अभिलिखत स्तम्भ विभिन्न खण्ड़ों के साथ स्थित था। यह किसी समय लगभग 5.25 मी. ऊँचा था। और इसके शीर्ष पर चार सिंहों एवं उसके ऊपर स्थित धर्मचक्र सुशोभित था। जो अब

सारनाथ संग्रहालय की शोभा बड़ा रहा है, इस स्तम्भ की शिल्पकला अदभुत है तथा इस स्तम्भ पर ब्राह्मी लिपि में लिखित आशोक कालीन लेख भी प्राप्त होते हैं।

धमेख स्तूप

सारनाथ की स्थापत्यकला में आज की स्थिति में यह स्तूप सबसे सुद्रण अवस्था में विद्यमान है। धमेख स्तूप की सरंचना ठोस तथा वेलनाकार बुर्ज की भांति है। इस स्तूप का व्यास 28.5 मीटर और ऊँचाई 33.53 मीटर (नीव समेत 42.20 मी.) है। इस स्तूप में सामान्यतः पाई जाने वाली आयताकार पीठ नहीं है तथ बेलनाकार अंडभाग की ऊँचाई 11.20 मी. है। इस स्तूप के नाम को लेकर विद्ववानों के अलग–अलग मत हैं। 12वीं शताब्दी के एक अभिलेख में **'धम्माक जयतु'** अर्थात धमक की जय का उल्लेख प्राप्त होता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 12वीं शताब्दी में इस स्तूप को धमाक कहा जाता था। डॉ बेनिस के अनुसार धम्मेख षब्द **'धर्मेक्षा'** से बना तथा कुछ लोग **'धम्मचक्र'** का अपभ्रंश रूप मानते हैं। श्री दयाराम सहनी ने धमेख का संस्कृत भाषा के **'धमेक्षा'** का पर्याय माना। इस स्तूप की नींव में बड़े आकार के प्रस्तर खण्डों का प्रयोग किया गया है। इसके ऊपर ईंटों से निर्मित बेलनाकार मेधि बनी है, मधि की आधी ऊँचाई तक आठ आले बने हैं, जिसमें पहले बुद्ध प्रतिमाएं रखीं होंगी। क्योंकि आज भी इन आलों में इनके आसन रख देखे जा सकते हैं। यहाँ की खुदाई से प्राप्त प्रतिमाएं सारनाथ संग्रहालय में रखीं गईं हैं। आलों के नीचे से चौड़ी अलंकृत पट्टियों में ज्यामितीय, पुष्पलताओं, पक्षियों तथा मानवीय आकृतियों का प्रयोग कर सुन्दर अलंकरण प्रस्तरों पर उकेरा गया है। धमेख स्तूप की शिला पट्टियों पर **'देवदूष्य'** की सजावट गुप्तकालीन शिल्पियों द्वारा कराई गई थी। 1836 ई. में कनिंघम ने इस स्तूप का उत्खनन किया था। जिसमें इस स्तूप की मूल संरचना मौर्यकाल मानी तथा अलंकृत शिलापट्टिकाओं द्वारा सौन्दर्यीकरण गुप्तकाल में किया गया है। यह स्तूप वास्तु स्थापत्यकाल की दृष्टि से महत्वपूर्ण है और बौद्ध अनुयाइयों के लिए आस्था का केन्द्र भी है।

मनौती स्तूप

धर्मराजिका स्तूप के आस–पास तथा मुख्य मंदिर के उत्तर पश्चिम में **'आर्टेल महोदय'** ने इन स्तूपों को दो पंक्तियों में प्राप्त किया था। ये स्तूप ईंटों तथा ठोस पाषाणों द्वारा अधिकांशतः चौकोर पीठ पर बनाये गए हैं। इनमें से कुछ पत्थर के स्तूपों पर महात्मा बुद्ध की प्रतिमाएं तथा बौद्ध संप्रदाय की प्रतिमाओं को उकेरा गया है। यहाँ पर मौर्य–शुंग कालीन स्तूप, चैत्य आदि के अवशेष प्राप्त होते हैं जो विशाल प्रान्गड़ में फैले हैं। इनमें से का एक आकार गोल है जो मुख्य मंदिर के उत्तर में है। इसके पास ही प्रथम शताब्दी ई.पू. की कुछ वेदिकाएं मिली हैं। जिन्हें महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता है। कुछ अलंकृत ईंटों से निर्मित संरचनायें प्राप्त हुई हैं जिन्हें गुप्तकालीन माना गया। यह मनौती स्तूप बौद्ध अनुयाइयों द्वारा पूजा के लिए बनवाये जाते हैं।

विहार

बौद्ध भिक्षु–भिक्षुणियों के निवास हेतु सर्वसुविधायुक्त विहारों का निर्माण किया जाता था। इसकी संरचना में पन्गतिवद्ध कमरे, बरामदा, आँगन तथा आँगन के मध्य एक कुआँ बनाया जाता था। सारनाथ में इस प्रकार के सात विहारों के अवशेष प्राप्त होते हैं। जिनका निर्माण कुषाण से गुप्तकाल तथा गड़वाल शासनकाल तक के माने जाते हैं। जिनका विवरण निम्न प्रकार है–

विहार संख्या–1

यह महाविहार मुख्य मंदिर से उत्तर दिशा में स्थित है। जिसे कनिंघम ने 1835 में उत्खनन द्वारा प्राप्त किया था। जिसमें गडवाल नरेश की रानी कुमार देवी का अभिलेख प्राप्त हुआ। जिससे पता चलता है कि इस महाविहार की स्थापना (1114–1154

ई.) में कुमार देवी ने **'धर्मचक्र जिन विहार'** के रूप में की थी। जिसकी लम्बाई 231.65 मीटर तथा आधार 2.58 मीटर ऊँचा है। इसका प्रान्गड़ पूर्व उत्तर तथा दक्षिण में घिरा हुआ एवं पश्चिम में खुला हुआ है। इस विहार से एक सुरंग प्राप्त होती है जिसकी लम्बाई 48.77 X33.22 मीटर है।

विहार संख्या–2

यह विहार आरम्भिक गुप्तकालीन माना जाता है, परंतु इस विहार का निर्माण दो विभिन्न काल, कुषाण तथा आरम्भिक गुप्तकाल में हुआ। इस विहार के मध्य में 27.69 मीटर का चौकोर आँगन है, जिसके चारों और 99.1 सेमी मोटी एक छोटी सी दीवार है जिसके ऊपर कक्षों की पंक्तियों के सामने स्थित बरामदे के खम्बे उठाये गए थे। इस विहार के पश्चिमी छोर पर नौ छोटे–छोटे कमरों के ईटों द्वारा निर्मित अवशेष प्राप्त होते हैं।

विहार संख्या–3

यह विहार धर्मचक्र स्तूप के पूरव दिशा की ओर स्थित है इस विहार की वास्तु स्थापत्यकला में ईटों से निर्मित आँगन में भूमिगत नालियों का निर्माण किया गया है। उत्खनन से कोठरियाँ और बरामदे प्रकाश में आये, बरामदे के स्तम्भों पर उन्नत कारीगरों ने उत्कीर्ण कार्य द्वारा सुसज्जित किया है, जिससे जान पड़ता है कि यह विहार कुषाण काल में निर्मित किया गया होगा। इस विहार की दीवारों की मोटाई अन्य विहार से अधिक है, इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह विहार कम से कम द्वितलीय रहा होगा।

विहार संख्या–4

यह विहार संख्या तृतीय से दक्षिण पूर्व दिशा की ओर स्थित है। इस विहार की भूमि 4.45 मीटर नीचे है तथा विहार के बरामदे के खम्भे 2.44 मीलम्बाई व 6.35 सेमी. ऊँचे आधार पर बने हैं। इनकी लम्बाई 2.35 मी. से 2.16 मी. तक है। इस विहार से त्रिसूल से असुर का वध करते हुए षिव की मध्य कालीन प्रतिमा प्राप्त हुई है। यहाँ पर कुमार देवी का देवनागरी लिपि में लिखा हुआ शिलालेख में उनके द्वारा इस विहार के निर्माण का उल्लेख प्राप्त होता है।

विहार संख्या– 5

इस विहार को मेजर किट्टो ने सन 1851–52 ई. में उत्खनित करवाया था। जिसमें उन्हें वर्गाकार आँगन प्राप्त किया जिसकी भुजा 15.25 मी. की है। इस चौकोर आँगन में चारों और 2.5 मी. लम्बाई तथा 2.44 मी. के कक्ष निर्मित थे। कक्षों के सामने स्तंभों पर आधारित बरामदा था जिसके सामने की ओर स्वागत कक्ष बना था। ये सभी भिक्षु संघ के निवास हेतु बनाये गए थे। आँगन के मध्य एक कुआँ बनाया गया, जिससे जल आपूर्ति हो सके। यहाँ से प्राप्त मृण मुहरों में अंकित तिथियों के आधार पर इस विहार का निर्माण छठी शताब्दी में हुआ तथा नवीं शताब्दी में भी इसका विस्तार किया गया।

विहार संख्या–6

यह विहार धमेखा स्तूप के पश्चित दिशा में स्थित था जो अब ढ़का हुआ है तथा इसके ऊपर बागवानी कर दी गई है। मेजर किट्टो यहाँ पर उत्खनन करवाया था, यहाँ से प्राप्त औषधि कूटने वाले अनेक पात्रों के आधार पर इसे औषधालय कहा था। इस विहार का निर्माण 8–9 वीं शताब्दी में हुआ जिसे गुप्तकालीन ईंटों के अवशेषों से बनाया गया।

विहार संख्या–7

यह विहार, विहार संख्या पाँच के पश्चिम दिशा में स्थित था। यह विहार पूर्व मध्यकाल के पुराने अवशेष की नींव पर बनाया गया है यह एक सामान्य विहार है। इस विहार में 9.15 मीटर का एक चौकोर आँगन है जिसके चारों ओर स्तम्भ युक्त बरामदे सहित कमरे बनाये गए हैं। इस विहार के पूर्व कोने में कुआँ प्राप्त होता हैं वर्तमान में सभी कमरे नष्ट हो चुके हैं। बस इनके अवशेष प्राप्त होते हैं। अतः सारनाथ बौद्ध कला एवं स्थापत्य की दृष्टि से उत्तर प्रदेश का महत्वपूर्ण स्थल है। जो विश्व विख्यात है जिससे देश ही नहीं बल्कि विदेशी बौद्ध अनुयाइयों को अपनी ओर आकर्षित करता है प्रतिवर्ष लाखों पर्यटक यहाँ आते हैं।

सहायक ग्रंथ

- अग्रवाल वसुदेवशरण 1953 कल्पवृक्ष, नई दिल्ली।
- अग्रवाल वसुदेवशरण 1977 भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन, वाराणसी।
- अग्रवाल वसुदेवशरण 1984 सारनाथ, आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली।
- उपाध्याय, भरतसिंह 2018 बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।
- उपाध्याय बलदेव 1978 बौद्ध दर्शन मीमांसा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।
- कनिंघम अलेक्जेण्डर 1975 भरहुत स्तूप (हिन्दी अनुवाद) भारतीय पब्लिशिंग हाउस दिल्ली।
- दीक्षित आशीष कुमार 2007 बौद्ध परिपथ (उत्तर प्रदेश) में पर्यटन समस्यायें, सम्भावनायें विकास एवं नियोजन', छत्रपति साहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर।
- धम्मपदट्ठ कथा ग्रन्थ प्रकाशक प्रेस–श्रीलंका, कोलम्बो 1931।